जीवन का आख्यान

प्रफुल्ल कोलख्यान

'न वेद व्यवहारोयं संश्राव्य: शूद्रजातिषु।
तस्मात्सृजापरं वेदं पंचमं सावणार्णिकम।'
- भरतमुनि: नाट्यशास्त्र, 1.12

इधर हिंदी में कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास आये हैं। इनमें भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' एक विशिष्ट स्थान रखता है। इस उपन्यास की खासियत यह है कि भारतीय समाज के जटिल ताना-बाना को समुदायों के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में तो सहकारता ही है, इन्हें विकास के समकालीन संदर्भों में भी पूरी संवेदनशीलता से सफलतापूर्वक रचता है। सामाजिक-सामुदायिक संदर्भों में स्त्री-जीवन की चेतना के बदलते हुए संस्तरों को उपन्यस्त करना भी इसे विशिष्ट बनाता है। पारिवारिक-सामुदायिक संदर्भों में कथा-प्रवाह के आगे बढ़ने के कारण इसमें सत्ता-राजनीति से बचते हुए विकास की राजनीति को प्रमुखता मिली है। इधर के कई महत्त्वपूर्ण उपन्यास केंद्र में चल रहे सत्ता-विमर्श के कई सरोकारों को उनकी विभिन्न राजनीतियों के परिप्रेक्ष्य में उठाते रहे हैं। यह बहुत ध्यानाकर्षक है कि संवेदनशील विषयों को आत्मसात करते हुए भी राजनीति के सतह का कोलाहल 'बाबल तेरा देस में' नहीं है। लेकिन इस से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह उपन्यास समय के राजनीतिक सवालों से कन्नी काटता है। दिलचस्प यह है कि उन

राजनीतिक सवालों से बरताव का जो रचनात्मक तरीका यह उपन्यास अपनाता है, उसके चलते राजनीति के सतह का कोलाहल जीवन का संगीत बनकर इसके आख्यान की पृष्ठभूमि के पोर-पोर में व्याप जाता है। यह सच है कि इसमें आये पात्र प्रमुख नहीं हैं, प्रमुख है पात्र का परिवार और समुदाय। चूँकि पात्रों को प्रमुखता नहीं प्राप्त है, इसलिए स्वाभाविक रूप से व्यक्तियों की मन:स्थितियों और मानसिक गुत्थियों को भी प्रमुखता नहीं मिली है।

यह उपन्यास ब्राह्मणवाद के सवालों को सीधे नहीं उठाकर समाज के बुनियादी स्तर पर उसके प्रसंगों को बहुत ही सहजता से उठाता है। परिवार में महिलाओं की उपस्थिति, स्थिति और निकट के सगे-संबंधियों के द्वारा यौन-शोषण जैसे संवेदनशील मुद्दे को उठाते हुए भी, परिवार नाम की संस्था को फालतूपने का खतरनाक शिकार बनने से रचना के स्तर पर बचा लेना इस उपन्यास की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। रोजी-रोजगार और लड़कियों की शिक्षा के लिए जमीनी स्तर पर महिलाओं की सक्रियता और भूमिका को उपन्यास बहुत ही यथार्थपरक ढंग से उठाता है, महत्त्वपूर्ण यह कि इसके आंतरिक अवरोधों – चाहे वह बालविवाह से जुड़े हुए हों या पारंपरिक नजरिये से जुड़े हुए हों, या मजहबी भ्रांतियों से जुड़े हुए ही क्यों न हों – की यथार्थता से भी मुँह नहीं चुराता है। नाट्यशास्त्र के प्रसंग से यह पढ़ा जा सकता है कि साहित्य के उद्भव का संबंध वृहत्तर-शास्त्रीयपरंपरा के समांतर लघु-लोकपरंपरा से है। एक साहित्यिक विधा के रूप में उपन्यास के विकास का संबंध धर्म-पुराण कथाओं के समांतर और उससे मुक्ति के लिए कर्म-प्रधान कथाओं के अनुसृजन से रहा है। इधर के कई महत्त्वपूर्ण उपन्यासों में ‘मिथ’ और ‘इतिहास’ का इतना गहरा साहित्यिक बरताव मिलता है कि उन्हें उपन्यास के बदले ‘मिथन्यास’ या ‘इतिन्यास’ कहना अधिक उचित लगता है। भगवानदास मोरवाल का उपन्यास ‘बाबल तेरा देस में’ इस अर्थ में भी महत्त्वपूर्ण है कि यह अपने संयोजन में तंत्र से नहीं सीधे लोक से जुड़ता है।

भारत की गंगा-जमुनी तहजीब की सामाजिक सत्यताओं पर गौर करने से यह बात उभर कर सामने आती है कि इस बहुप्रशंसित तहजीब का अंतर्मिलानी रंग समाज के हाशिये पर अधिक गाढ़ा है, जबकि मुख्य-धारा में एक दूसरे से परहेज और टकराव अधिक है। जितने भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं उन पर मुख्य-धारा का जबर्दस्त प्रभाव है। जबकि ‘तीर्थों’ का क्षेत्रीय प्रसंग तहजीब के अंतर्मिलानी रंग का उदाहरण है। ‘बाबल तेरा देस में’ भी ऐसा एक प्रसंग है, ‘मुख्य द्वार

से प्रवेश कर अंदर परिसर में घुसते ही सोनदेई का विचलन शुरू हो गया। मन-पंछी रह-रहकर वापस उड़ने के लिए फड़फड़ाने लगा। उसे अपना दम घुटता-सा महसूस होने लगा। उसने पहली बार जीवन में ऐसा मंदिर देखा है कि जिसके श्रद्धालु और भक्तजन तो हिंदू हैं लेकिन मंदिर के नाम पर यह मस्जिद की इमारत है। सबके साथ जब वह बाबा की समाधि बल्कि कहिए मज़ार पर पहुँची, तब उसकी आशंका विश्वास में बदलने लगी। हैरानी तो उसे यह देखकर हुई कि अच्छी-ख़ासी इतनी विशाल मस्जिद कैसे मंदिर में परिवर्तित हो गई? न घंटा, न घड़ियाल। न रौली, न सिंदूर। न भजन, न कीर्तन। न दीया, न बाती – फिर कैसा मंदिर?' (पृ.81) इस मंदिर के बारे में यह भी ध्यान देने योग्य है कि 'लगभग डेढ़ मीटर चौड़े आसारवाले इस मस्जिदनुमा मंदिर की सुंदर बनावट का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि ऊँची-उँची छतों में लटकी कड़ियों पर बैठी चिड़ियाँ जब-जब चहकतीं, तो उनका नाद देर तक इमारत में गूँजता रहता। सोनदेई ने कल्पना की कि यदि इस मस्जिद के ऊपर बने गुंबद को ढहा दिया जाए, तो कोई नहीं कह सकता कि यहाँ कभी कोई मस्जिद थी – ठीक अयोध्या की तरह। हाँ, सोनदेई को यह देखकर जरूर तसल्ली हुई कि इस इमारत के जीर्णोद्धार के नाम पर यदि इसी तेज़ी-से कार्य चलता रहा तो अवश्य ही भविष्य में उसकी यह इच्छा पूरी पूरी हो जाएगी।' (पृ.82) बाबल तेरा देस में इस ओर जबर्दस्त संकेत करता है कि 'इमारत के जीर्णोद्धार' से समाज के जीर्ण-शीर्ण हो जाने का खतरा कितना बढ़ गया है। इसे इस तरह भी पढ़ा जा सकता है कि जीवन के जीर्णोद्धार के नाम पर जीवन को, आर्थिक-विकास की संरचनाओं के जीनर्णोद्धार के नाम पर विकासमूलक अर्थव्यवस्था को, और इसी तरह जनतंत्र के जीर्णोद्धार के नाम पर जनपक्षीय राजनीति को जीर्ण-शीर्ण बनाये जाने का खतरा बढ़ता जा रहा है।

एक है शकीला। शकीला निरंतर गतिशील है। अपनी गतिशीलता में शकीला कल्पनाओं में रंग भरती है, चुपके-से उन सपनों को नन्हीं हथेलियों पर धर देती है। इसलिए, 'सोचती है जैतूनी कि इन बच्चियों को ये सपने किसने दिखाए हैं? कौन भर सकता है इस हवेली में इनकी कल्पनाओं में रंग? जरूर यह शकीला का ही काम है। इनकी इच्छाओं को वही दे रही है खाद-पानी।' (पृ.258) शकीला अपने आसपास को बदलना चाहती है, अपनी इस चाहत में वह खुद भी बदलती जाती है, इसलिए 'सैकड़ों मील दूर दक्षिण भारत के हैदराबाद से अधेड़, अँगूठा टेक दीन मोहम्मद के साथ आई शकीला, जिसे अपने वजूद के लिए किसी सूखे दरख्त से टूटे पत्ते की तरह खाद-मिट्टी बनने में वर्षों लग गये वह अब, वह शकीला नहीं रही। महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका के लिए, मेवात में विदेशी ऋण और अनुदान पर जीवित एक सरकारी संस्था इसे सम्मानित कर रही है।' (पृ.333) महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास में शकीला की 'महत्त्वपूर्ण भूमिका' के लिए 'विदेशी ऋण और अनुदान पर जीवित' जो सरकारी संस्था उसे सम्मानित करती है,

उस तरह की सरकारी संस्थाओं के मानोभावों को भी शकीला खूब समझती है, लेकिन ऐसी सरकारी संस्थाएँ शायद ही कभी 'शकीलाओं' की ब्यथा को समझ पाती हों। सरकारी ही क्यों गैर-सरकारी संस्थाओं के कर्त्ता-धर्त्ता भी कहाँ उसकी ब्यथा को समझ पाते हैं! इसीलिए असगरी के प्रश्न उनकी चपलताओं को लगाम डालते हुए उन्हें निरुत्तर बना देते हैं। 'चलो, हमन्ने तो यासू फायदो होएगो। हम तो या सबर का फल ए, जो भी कड़बो या मीठो होएगो, वाहे खा लेंगा, पर यासू तमन्ने कहा फायदो होएगो? तम काँई लू दिल्ली से इतनी दूर चलके धूल-धूप में अपनी कंचन-सी देह झुलाती डोलो हो?' (पृ.340) असगरी के इस प्रश्न पर चारोंखाने चित्त गिरीं वे तीनों। उनमें से किसी से जवाब देते नहीं बना असगरी के इस प्रश्न का।

यह सच है कि 'स्वयं सहायता समूह' जिसे संक्षेप में 'एस.एच.जी.' कहा जाता है के कारण महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों और सशक्तीकरण में नई त्वरा आई है। 'स्वयं सहायता समूहों' में महिलाओं की भागीदारी लगभग नब्बे प्रतिशत है। प्रथम चरण में यह सफलता बहुत प्रभावशाली है। लेकिन, सामाजिक सुधार का काम 'स्वयं सहायता समूह' के गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रेरकों के बूते की बात इसलिए भी नहीं है कि सामाजिक सुधार की प्रेरणाओं और प्रतिज्ञाओं के समाज के भीतर से उठने पर ही सामाजिक समर्थन मिल पाता है। 'स्वयं सहायता समूह' समाज की भीतरी आकांक्षा है और 'गैर-सरकारी संगठन' अक्सर बाहरी हस्तक्षेप के रूप में प्रकट होकर कमान अपने हाथ में ले लेता है! गैर-सरकारी संगठन अपनी बनक में ही निहित मौलिक बाध्यताओं के कारण समाज की भीतरी प्रेरणाओं के रूप में सक्रिय न होकर बाहरी हस्तक्षेप के रूप में सक्रिय होते हैं। 'भीतरी आकांक्षा' और 'बाहरी हस्तक्षेप' के आत्म-विरोध को सतर्कता से साध नहीं पाने के कारण टिकाऊ सामाजिक परिवर्त्तन का काम दुष्प्रभावित होता है। सामाजिक परिवर्त्तन का काम राजनीतिक और आर्थिक परिवर्त्तन के साथ-साथ लेकिन स्वतंत्र रूप से संपन्न होता है। 'गैर-सरकारी सगठन' के अधिकतर कर्त्ता-धर्त्ता परिवर्त्तन की इस संगामी प्रक्रिया की संवेदनशीलता को ठीक से समझ ही नहीं पाते हैं और किसी 'शकीला' के सामने आते ही उनकी दिलचस्पी का आधार ही बदल जाता है। शकीला के बारे में, 'एकदम नई जानकारी थी उन तीनों के लिए। एकाएक अपनी भावी 'स्टोरी' में दाखिल होनेवाले इस सस्पेंस ने नई जान डाल दी। तीनों समाज सेवियों के चेहरे मारे ख़ुशी के सुर्ख़ होते चले गए। परन्तु दूसरी तरफ़ शकीला का चेहरा ज़र्द पड़ता चला गया यह सोचकर कि जिन्दगी से अघाई ये तथाकथित समाजसेवी उसके अतीत पर जम चुकी परतों को, अपनी उत्कटता के नाखूनों से खरोंचे बिना नहीं मानेंगी। अपने जिस स्याह अतीत को शकीला बमुश्किल भूल पाई है, आज फिर उसे उसी में लौटना पड़ेगा।' (पृ.341) लेकिन लौटना पड़ता है उन 'समाज सेवियों' को!

साहित्य पढ़ने से दो तरह के लाभ पर तुरंत ध्यान जाता है। पहला लाभ तो यह कि जिन्हें हम पहले से जानते हैं, उन्हें भी नये तरह से जानने का अवसर मिलता है और दूसरा यह कि जिन्हें हम नहीं जानते हैं, उन से भी हमारा आत्मीय परिचय होता है। साहित्य अनात्मीय के आत्मीयकरण की अनंनत संभावनाओं के द्वार खोलने और भिन्नताओं में अभिन्नता के सूत्र संयोजन के कारण भी महत्त्वपूर्ण होता है। भगवानदास मोरवाल का उपन्यास 'बाबल तेरा देस में' जीवन की जमीन को समझने की नई तमीज अर्जित करता है। बड़े-बड़े राष्ट्रीय मुद्दों का जमीन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इसे इसमें बखूबी उपलब्ध किया गया है। भाषा और लोकोक्तियों के जरिये लोक-रंग का गहरा असर कथ्य को प्रामाणिक तो बनाता है, लेकिन इस प्रामाणिकता के बावजूद संस्थानिक हिंदी जाननेवाले पाठकों के सामने सामाजिक हिंदी का यह लोक-रंग थोड़ा-सा रस-भंग भी कर सकता है। 'बाबल तेरा देस में' अड़तालीस बोलियों से समृद्ध हिंदी समाज का अपना साहित्य है!

बाबल तेरा देस में (उपन्यास)

भगवानदास मोरवाल

राजकमल प्रकाशन -2004

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।

सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान